बाल साहित्य के बिना अधूरी है बच्चों की शिक्षा

पत्रिका की संवाद श्रृंखला की यह पाँचवीं परिचर्चा है। संवाद का विषय है 'बाल साहित्य के बिना अधूरी है बच्चों की शिक्षा।' इस संवाद में राजकीय प्राथमिक विद्यालय डिंडोरी, बाँसवाड़ा के शिक्षक विजय प्रकाश जैन हमारे साथ हैं। शिक्षक संगीता द्विवेदी, नवीन शासकीय शाला, गामखेड़ा, भोपाल से और बाल साहित्यकार व शिक्षक मनोहर चमोली, राजकीय इंटर कॉलेज पौढ़ी गढ़वाल, उत्तराखंड से हैं। इनके अलावा इसमें शामिल हैं एकलव्य फ़ाउण्डेशन से टुलटुल बिस्वास, जिन्हें बाल साहित्य चयन व प्रकाशन का लम्बा अनुभव है, राजेश उत्साही, जो बच्चों की पत्रिका *चकमक* के लम्बे समय तक सम्पादक रहे हैं और बच्चों के लिए लिखते रहते हैं। सं.

गुरबचन सिंह : बच्चों के सामान्य और स्कूली जीवन में बाल साहित्य की बहुत अहमियत है। बच्चों का सम्पूर्ण व्यक्तित्व निखारने में, उनको गढ़ने में बाल साहित्य की अहम भूमिका होती है। यही वजह है कि देश के नीतिगत दस्तावेज़, पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या और क़ानूनी दस्तावेज़ बच्चों के लिए अच्छे बाल साहित्य की वकालत करते हैं और चाहते हैं कि बच्चों के स्कूली जीवन में और उनकी पढ़ाई-लिखाई के दौरान उन्हें बेहतरीन बाल साहित्य मिलना चाहिए। इसका एक दूसरा पहलू यह भी है कि बाल साहित्य को शिक्षा में एक तरह से अवरोध के तौर पर देखा जाता है। यह माना जाता है कि पढ़ाई तो पाठ्यपुस्तकों से ही होती है और बाल साहित्य स्वेच्छा से पढ़ने की चीज़ है, इसे एक तरह से अनुपयोगी ही माना जाता है। ये द्वन्द्व स्कूली दायरों में आमतौर पर दिखाई देता है। अभिभावकों को भी लगता है कि बच्चे पाठ्यपुस्तकें ही पढ़ें। लेकिन इधर कुछ वर्षों में, बाल साहित्य अवरोध है, यह मान्यता कुछ दरक रही है। इसे अब शिक्षा में एक अच्छे अवयव के तौर पर देखा जा रहा है। बच्चों व शिक्षकों के बीच बाल साहित्य को जगह मिल रही है। बच्चों की शिक्षा में अब यह गहन विचार विमर्श का विषय है।



हमारे देश में बहुत-से प्रकाशक बाल साहित्य छापते हैं। हालाँकि इनमें से बहुत कम इसे संजीदगी और गहरी समझ के साथ छापते हैं। इसीलिए बाल साहित्य की अहमियत समझने वाले शिक्षक, माता-पिता और शिक्षक-प्रशिक्षक सोचते हैं कि किताबों को चुनकर बच्चों को देने के आधार क्या हों। ऐसी कोई सुविचारित व्यवस्था नहीं है जिससे अच्छा बाल साहित्य पहचाना जा सके। अच्छा बाल साहित्य कैसा हो, इसके स्कूली जीवन में क्या मायने व महत्त्व है, इसका अर्थवान उपयोग कैसे किया जा सकता है, पर संवाद आयोजन का यही कारण है।

मैं आप सभी का इस संवाद में स्वागत करता हूँ।

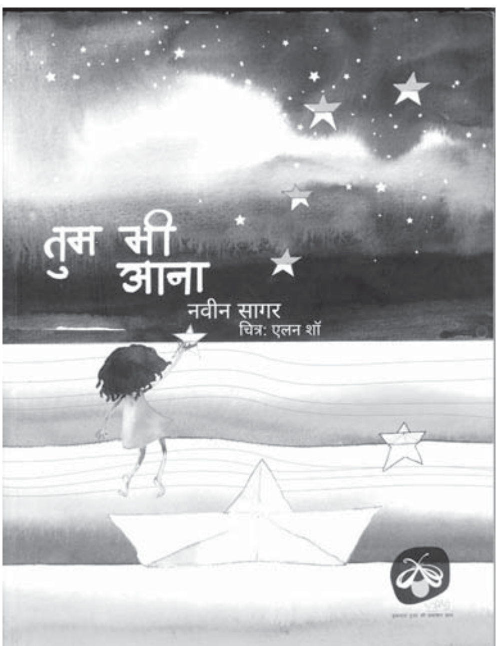
मनोहर चमोली से अनुरोध है कि वे अच्छा बाल साहित्य क्या है, उसे कैसा होना चाहिए और उसकी स्कूली जीवन में, कक्षाओं में क्या भूमिका है, पर अपनी बात रखें।

मनोहर चमोली : नमस्कार! मैं दो सवाल समझ पाया हूँ पहला, बाल साहित्य कैसा हो और दूसरा यह कि उसकी बच्चों की शिक्षा में क्या भूमिका हो। मुझे पढ़ाते हुए 15-16 साल हो गए हैं, कई बार हमारे अनुमान भी बच्चों के सामने ध्वस्त हो जाते हैं। हमें लगता है कि ये किताब रोचक है और आनन्द देगी लेकिन बच्चे उसमें आनन्द नहीं पाते। कभी ऐसा होता है कि हम बहुत बेमन से कुछ ले गए लेकिन उस किताब को बच्चे बहुत अच्छे-से पढ़ते हैं, उसपर चर्चा करते हैं, सवाल उठाते हैं। मुझे लगता है कि रोचकता और आनन्द देने वाली यह बात सबसे महत्त्वपूर्ण है। पर नैतिकता का दम्भ भरने वाले बहुत-से लोग शायद ऐसी किताब या कहानी को काम में नहीं लेंगे, जो सिर्फ़ रोचक हो या जिसे सिर्फ़ आनन्द के लिए पढ़ा जाए। एक और ज़रूरी बात मुझे बहुत देर में समझ आई कि हमारी किताबें सरल और सहज हों, जिससे बच्चे कठिनाई न महसूस करें। 20-25 सालों के अनुभव में मुझे ऐसा भी लगता है



कि जिन किताबों में वैज्ञानिक व तार्किक दृष्टि दिखती है, वो किताबें बच्चे पसन्द करते हैं। वे कहानियाँ बच्चों को ज़्यादा अच्छी लगती हैं और वे उन्हें आत्मसात कर लेते हैं। हम और आप भी जिन पाठ्यपुस्तकों की कहानियों को पढ़कर बड़े हुए हैं उनमें हम अपना जीवन देखते, ढूँढ़ते थे, कहीं अपने-आप को किसी पात्र में शामिल करते थे, तभी वो हमें पसन्द आती थी। लम्बे-लम्बे वाक्य वाली कहानियाँ या जिनमें ज़्यादा प्रतीक हैं, बहुत ज़्यादा भिन्न-भिन्न पात्र हैं उन्हें बच्चे पढ़ लेते हैं और चर्चा भी कर लेते हैं। लेकिन अकसर लगता है कि वे उसमें उलझ जाते हैं। मेरा अनुभव है कि रोमांचक घटनाओं वाले वर्णन, कहानियाँ भी बच्चों को बहुत पसन्द हैं। कहानी का बहुत लम्बा या छोटा होना मुझे कोई समस्या नहीं लगता। कोई कहानी अच्छी है और चार-पाँच पेज की भी है तो भी छोटे बच्चे उसको पढ़ लेते हैं और समझ भी लेते हैं। परसों ही एक साथी कह रहे थे कि बच्चों में तार्किकता नहीं होती, वे तर्क नहीं समझते। लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगता, बच्चों को ऐसी कहानियों में भी मज़ा आता है। ग्रामीण परिवेश के बच्चे ऐसी कहानियाँ बहुत पसन्द करते हैं जो उनको मुश्किलों से उभरने की ताक़त देती हैं जैसे– महागिरी वाली कहानी। जिन कहानियों में लोककथा वाला बिम्ब हो वे भी बच्चों को बहुत पसन्द आती हैं। कभी-कभी हम अन्धविश्वास

वाली कहानियाँ भी ले जाते हैं मगर बच्चे बहुत तर्क करते हैं कि नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए। इन अनुभवों से मुझे लगता है कि बाल साहित्य में वो होना चाहिए जो बच्चे पसन्द करते हैं। हमारी कक्षाओं में बच्चों के पास विषय की ही किताब होती हैं जो उनको पूरे साल ऊब और खीझ देती हैं। जैसे ही हम दूसरी किताब या कहानी की एक-दो कृति ले जाते हैं बच्चे उसपर लपकते हैं। ऐसा लगता है कि ये किताबें बच्चों को ऊब और कुण्ठाओं से मुक्त करती हैं। पाठ्यपुस्तक का ढाँचा, उसकी बाध्यताएँ अन्य



किताबों और कहानियों में नहीं होतीं। इसीलिए बच्चे उनमें ज़्यादा मज़ा लेकर रुचि से पढ़ते हैं। पाठ्यपुस्तकों में आमतौर पर चित्र भी कम ही होते हैं। एनसीईआरटी की प्राथमिक कक्षाओं की किताबों में तो चित्र हैं लेकिन कक्षा 6, 7, 8 की *बसंत* में उतने चित्र नहीं हैं। हम एकलव्य की *चकमक*, प्रथम, तूलिका, इकतारा की किताबें लें तो इनमें चित्र पाठ्यपुस्तक से अलग होते हैं और बच्चे इनके चित्रों को ज़्यादा पसन्द करते हैं। पाठ्यपुस्तक में भी 'भालू ने खेली फुटबॉल' जैसी कहानियाँ हैं लेकिन किताब की कहानी में और पाठ्यपुस्तक में चित्रों के हिसाब से बहुत अन्तर है। एक और छोटी-सी कहानी 'नीलू और पीलू' है, वो पाठ्यपुस्तक में अलग तरीक़े से है और किताब में अलग तरीक़े से।

इन किताबों के उपयोग के समय शुरू में परम्परागत चर्चा ही करते हैं। जैसे– अरे यार, आज तो बहुत ठण्डा हो रहा है, देखो कल पौढ़ी में बरफ़ पड़ी थी यहाँ नहीं पड़ रही है। अच्छा चलो, आज एक ऐसी कहानी सुनाते हैं जिसमें शेर के बच्चे को या छोटे-से बच्चे को बरफ़ का गोला समझ लेते हैं। हम यहाँ बरफ़ की एक बॉल बना लेते हैं। बच्चे एकदम से सतर्क हो जाते हैं, समझ जाते हैं। कहानी सुनाने से पहले जो चर्चा हम कर पाते हैं वह पाठ पढ़ते समय कम कर पाते हैं। दूसरा, इन किताबों से पढ़ने का स्वाद जागता है जो पाठ्यपुस्तकों से नहीं हो पाता। कहानी में मज़े की भावना ज़्यादा रहती है। शुद्ध उच्चारण, व्याकरण वाला मसला नहीं होता और बच्चे खुलकर बात करते हैं। वे सोचने, समझने, व्यवहार, पात्रों के साथ अपने-आप को जोड़ना, सभी बातें कर लेते हैं। पढ़ना और लिखने से पहले, सुनना और सुनाना, बोलना और बुलवाना, सवाल करना, समझकर बात करना, आसपास से कहानी जोड़ना, ये बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह सब पाठ्यपुस्तक की कहानियाँ इतने अच्छे तरीक़े से नहीं कर पातीं। पढ़ना-लिखना सीखना तो बाद की बात है। *चूहे को मिली पेंसिल* वाली कहानी में भी बच्चों को बड़ा मज़ा आता है। कक्षा 8, 9, 10 के बच्चे भी उसको बहुत अच्छे-से पढ़ते हैं। मुझे नहीं लगता कि चित्रात्मक कहानियों की किताबें केवल कक्षा 1, 2 के लिए हैं, बड़े बच्चे भी उनको देखकर बहुत ख़ुश होते हैं।

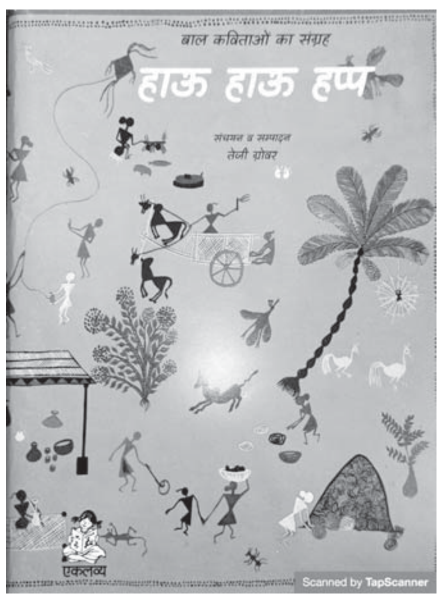
गुरबचन सिंह : संगीता इस विषय पर आप अपनी बात रखें।

संगीता : मुझे साहित्य का बहुत अनुभव नहीं है। जब मुझे भाषा सीखने और सिखाने का अवसर मिला तो महसूस हुआ कि बच्चों की

पाठ्यपुस्तकें शुरू से ही कुछ सिखाने की या ज्ञान की या आपने क्या सीखा है उसकी ओर इंगित करती हैं। इनसे बच्चे जुड़ नहीं पाते हैं और पढ़ने में उनकी रुचि जाग्रत नहीं हो पाती। बस यही रहता है कि मुझे याद करना है या मैं इतना पढ़ लूँगा तो पास हो जाऊँगा, इसी तरह के उनके विचार होते हैं। पढ़ना उनका शौक़ नहीं बन पाता है। वहीं दूसरी ओर, यदि बाल साहित्य उनके मन के अनुसार और रुचिकर हो, तो पढ़ना आदत भी बन जाती है और पढ़ने का शौक़ भी विकसित होता है। सामान्यतया पाठ्यपुस्तकों में शिक्षाप्रद कहानी या कविताएँ, प्रार्थना या धन्यवाद करने वाली रचनाएँ होती हैं जिन्हें बच्चा सिर्फ़ रट लेता है, उनका कोई मतलब उसे समझ में ही नहीं आता है। जो कविता, कहानी बच्चों को पढ़ने में मज़ा देती हैं उन्हें स्वतः ही वे पढ़ने लगते हैं, समझने भी लगते हैं और याद भी करने लगते हैं। बाल साहित्य ऐसा होना चाहिए जिसमें बच्चे की भाषा व उनके परिचित शब्द हों और उनका परिचित परिवेश हो, तो शायद उनको समझने में अच्छा लगेगा और सरलता रहेगी। शुरुआत में बच्चों के लिए सिर्फ़ मनोरंजनपूर्ण कविता और कहानी होनी चाहिए जिन्हें वे बार-बार सुनें, पढ़ें, बोलें और इसके अवसर मिलें। इससे उनकी सोच, उनके विचार और उनका रोमांच अलग ही होगा और उनको साहित्य में रुचि भी होगी। जैसे एक छोटी-सी कविता थी– 'छत पर गिरे धप धपा धप, रसगुल्ला खाया लप लपा लप, ढपली बजे ढप ढपा ढप, चक्की चले चप चपा चप'। यह ऐसी कविता है जिसमें कुछ ग़लत-सही नहीं। मतलब ऐसा नहीं कि आपने कोई लाइन ग़लत कर दी या आपने कुछ ग़लत बोल दिया। बच्चा अपने विचार भी उसमें जोड़ सकता था एवं कविता को आगे बढ़ा और गा सकता था। डर नहीं था कि कुछ ग़लत हो जाएगा, बस मज़ा था। कहानी और कविता ऐसी होनी चाहिए जिसमें बच्चे को मज़ा आए और उसके शब्दों और ध्वनियों से वो खेल सके, मज़ा ले सके और चाहे तो उसमें अपनी बात भी जोड़ सके। पहली से तीसरी के बच्चों की पढ़ने में रुचि जाग्रत करना और उन्हें स्कूल में लाना ही बहुत बड़ा लक्ष्य है। अच्छा बाल साहित्य वह है जो बच्चों को शाला में उपस्थित होने के लिए प्रेरित करे व मज़ा दे। अध्यापक और शिक्षक के बीच भयमुक्त वातावरण बन सके। बच्चों को ऐसी छोटी-छोटी मज़ेदार बाल कविता, कहानी और साहित्य मिलना चाहिए जो उनको समझ आए और आसपास के परिवेश से सम्बन्धित हो। यानी ऐसा हो जिसमें बच्चा स्वयं को सम्मिलित कर पाए। उसे लगे यह तो मेरी ही कहानी है, वह उसका मानसिक चित्रण कर सके, मज़ा ले सके और उससे जुड़ाव महसूस करे। जिज्ञासा और कौतूहल बढ़े, कि आगे क्या होगा, सीधे-सीधे कहानियाँ ख़त्म न हों। उनमें बच्चों के सोचने और उनके विचार देने के लिए भी जगह हो, उसमें द्वन्द्व हो। उदाहरण के लिए, एक छोटी-सी कहानी ले सकते हैं कि जैसे मोहन को प्यास लगी थी और उसे चलते-चलते कुआँ मिल गया तो मोहन बहुत ख़ुश हो गया और उसे बाल्टी भी मिल गई, मगर वहाँ रस्सी नहीं थी। ये कहानी यहाँ छोड़ सकते हैं कि अरे रस्सी नहीं थी तो मोहन ने प्यास कैसे बुझाई होगी, उसे पानी कैसे मिला होगा, उसने क्या किया होगा। यहाँ बच्चों को अपने विचार व्यक्त करने के लिए भी मौक़े मिलते हैं कि अगर आप प्यासे हो तो आप क्या



करोगे? इस तरह का साहित्य बच्चों के लिए हो कि वो अपने विचार भी व्यक्त कर पाएँ तो उनकी समझ भी बढ़ेगी और उनकी पढ़ने और लिखने में रुचि भी बनेगी और तब वे पढ़ने-लिखने की कोशिश भी करेंगे। कविताएँ छोटी हों, सरल शब्द हों और ज़रूरी नहीं है कि कविताएँ शुरू से ही बच्चों को कोई शिक्षा दें। ज़रूरी यह है कि ऐसी ध्वनियाँ हों जो उनमें रोमांच पैदा कर दें और बच्चे उनके साथ खेल सकें। मैंने अपनी कक्षा के विद्यार्थियों के साथ यही किया तो बच्चे पढ़ने के साथ-साथ लिखना भी सीखने लगे। पहले मैं पारम्परिक तरीक़े से पढ़ाती थी। जैसे, पहले वर्णमाला, फिर शब्द और अन्त में वाक्य सिखाना। बच्चे सीख भी नहीं पा रहे थे। विद्यालय में नित नई तकनीकें आती रहती थीं, कभी ABL, कभी दक्षता संवर्धन आदि। सभी का उद्देश्य बच्चों को सिखाने पढ़ाने ही था मगर पिछले वर्षों से मेरी पढ़ाने की शैली में बहुत परिवर्तन हुए।



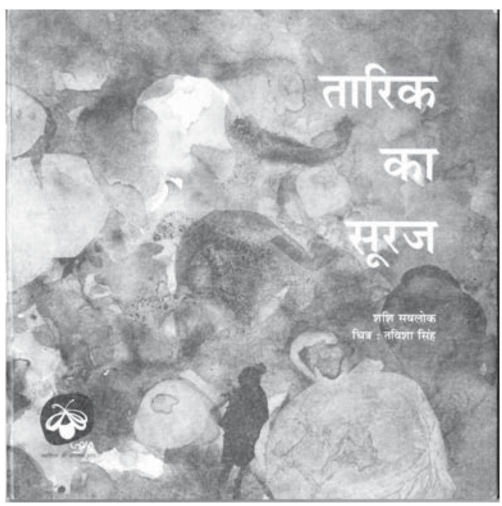
मैंने बच्चों की भाषा सीखी। बच्चा घर से बहुत कुछ लेकर आता है उसी को आगे बढ़ाना है। मैंने बच्चों से ही पूछकर लिखने की कोशिश की। छात्रों को बोलने और सुनने के भरपूर अवसर दिए और उन्हें अपनी बात बोलने के लिए कहा। बच्चों से छोटी-छोटी कविता और कहानी सुनीं व उन्हीं के साथ बनाईं भी। झोला पुस्तकालय, *बरखा* सीरीज़ की पुस्तकें, ABL कार्ड और कुछ *बाल भास्कर* जैसा ही बच्चों का साहित्य मुझे मिला जिसे लेकर मैंने पहली और दूसरी के साथ काम किया। शुरुआत में मुझे अन्तर समझ में नहीं आया परन्तु तीसरी कक्षा तक आते-आते बच्चे स्वयं पढ़ना-लिखना सीख गए। लिखने में ग़लतियाँ होना स्वाभाविक है। बच्चे पूरा शुद्ध नहीं लिख पाते थे लेकिन वाक्य बनाना सीख गए थे। चौथी और पाँचवीं तक बच्चे ख़ुद ही काफ़ी पढ़ने लगे थे। हिन्दी और पर्यावरण की किताब शौक़ से पढ़ लेते थे और ख़ुद ही प्रश्न-उत्तर ढूँढ़ लेते थे। वे दिए गए शब्दों से कहानी बनाने लगे, छोटी कविताएँ, पत्र लिखने लगे और अपनी भाषा का उपयोग करने लगे। तुकान्त (rhyming) शब्दों का उपयोग भी उनको आ गया, तब मुझे समझ में आया कि बच्चों का साहित्य ऐसा हो जिसमें उनके मन की बात और उनकी सोच व उनके शब्द हों, तो वे सरलता से सीख जाते हैं और आत्मसात कर लेते हैं। अकसर पुस्तकों की भाषा बच्चों को समझ ही नहीं आती, साहित्य ऐसा हो जिसमें सरल भाषा हो जो बच्चों को आसानी से समझ आए। अन्त में, यही कहना चाहूँगी कि लिया गया या चुना गया बाल साहित्य ऐसा हो जिसे बच्चा आनन्द से पढ़े, कल्पना कर सके। यथार्थ की जानकारी हो लेकिन उसमें भी थोड़ा परिवर्तन कर सके, बच्चे कुछ सृजन कर सकें। सृजनात्मक परिवर्तन कर कुछ रोमांच पैदा हो तो ऐसा साहित्य बच्चों के सीखने में बहुत काम आएगा।

गुरबचन सिंह : राजेश उत्साही से आग्रह है वे अपनी बात रखें।

राजेश उत्साही : मेरा बच्चों के साथ काम करने का शिक्षकीय अनुभव नहीं है। बच्चों के लिए *चकमक* और *गुल्लक* पत्रिकाएँ सम्पादित ज़रूर की हैं। कुछ दिनों पहले लिखे अपने लेख से कुछ चीज़ें रखना चाहता हूँ। साहित्य समाज का एक दर्पण है। जैसा समाज में होता है, वही साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है। सही मायने में साहित्य का रिश्ता हमारे जीवन से है।

हमारे आसपास जो घटता है उसे देखकर, उसे भोगकर हम दुखी होते हैं, ख़ुश होते हैं, उदास होते हैं, ग़ुस्सा होते हैं, हँसते हैं, खिलखिलाते हैं, रोते हैं, चीखते हैं। जब कभी इन सबका आख्यान कहीं लिखा हुआ पढ़ते हैं, हमें वैसा ही महसूस होता है जैसा हम देखते या भोगते समय महसूस करते हैं। इसमें कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, किसी भी विधा की चीज़ हो सकती है। पढ़ते हुए हम असीम आनन्द महसूस करते हैं या उसमें डूब जाते हैं। दरअसल उसकी विधा हमें पाठक के रूप में वह स्वतंत्रता प्रदान करती है जो हमें मनुष्य होने के नाते हासिल होनी चाहिए।

हमारे जीवन में जिन बातों की कमी होती है या जिसकी स्वतंत्रता नहीं होती है वो जब साहित्य में दिखाई देती है तो हम उनका आनन्द उठाते हैं। साहित्य वास्तव में हमें उन ज़ंजीरों से मुक्त करता है जिनमें हम अमूमन जकड़े होते हैं। मतलब व्यावहारिक ज़िन्दगी में, सचमुच की ज़िन्दगी में शायद हमारे पास उनको करने के लिए मौक़े नहीं होते हैं। कृष्ण कुमारजी इसको एक अलग तरीक़े से कहते हैं कि साहित्य एक अपेक्षित अर्थ जानने का ज़रिया है। उसके ज़रिए कुछ रूपाकारों को, कुछ रूपकों को प्रसारित करने का माध्यम है। मेरी मान्यता है कि बाल साहित्य जैसा कुछ नहीं होता है। हो सकता है कि सब लोग इससे सहमत नहीं हों। इसपर विचार करना चाहिए, इसलिए मुझे जब भी मौक़ा मिलता है मैं ये बात ज़रूर कहता हूँ। गुलज़ार साहब ने इसके सन्दर्भ में बहुत सुन्दर बात कही है जो मुझे हमेशा याद रहती है। इसे हम बाल साहित्य की एक कसौटी के रूप में देख सकते हैं। उन्होंने कहा कि अच्छा बाल साहित्य वह है जिसका आनन्द बच्चे से बड़े तक ले सकें। यह बहुत गहरी बात है। अमूमन यह होता है कि हम बच्चों के साहित्य को बिलकुल काटकर रखते हैं कि ये बच्चों के लिए है। जब इस तरह की चीज़ होती है तो उसे लिखते समय भी समस्याएँ आती हैं और चयन के समय भी। उसी तरह के बिन्दु गढ़कर आते हैं जो उसको खाँचे में फ़िट करें। दिक़्क़त इन प्रचलित अवधारणाओं से शुरू हो जाती है कि बाल साहित्य कुछ अलग होता है। ज्यों-ज्यों हम बड़े होते हैं जीवन को देखने का हमारा स्वतंत्र बाल सुलभ नज़रिया ग़ायब होने लगता है। हम जीवन को स्वतंत्रता से देखने की बजाय प्रचलित मान्यताओं, नियमों और प्रतिबन्धों के साथ देखने लगते हैं। तथाकथित नैतिकता और उसके आदर्श हमारे सामने आ खड़े होते हैं। ऐसे में बच्चों के लिए रचना को रचते या चुनते समय, तमाम बन्दिशें और शर्तें हमारे सामने आ जाती हैं। जैसे रचना किस उम्र के बच्चे के लिए है, उसकी भाषा क्या होगी, परिवेश क्या होगा, क्या जो हम कहने जा रहे हैं वो बच्चा समझ पाएगा या उसको समझने के लिए ज़रूरी अवधारणाएँ बच्चे में विकसित हो गई हैं। इस तरह की सारी बन्दिशें हमें उन तमाम चीज़ों से रोकती हैं जो बच्चों के बीच ले जाने से उनका फ़ायदा होगा या वो उसमें आनन्द उठाएँगे। जब लोग बच्चों के लिए कहकर लिख रहे होते हैं तो कहा जाता है कि आप अपने अन्दर के बच्चे को याद करके लिखें, यहाँ पर भी एक मुश्किल हो जाती है। उस साहित्य में अपने अतीत को ध्यान में रखकर लिखा होता है, उसमें विरले ही ऐसे होंगे जो



अपने आसपास के समकालीन बच्चे को देखकर, सुनकर, समझकर उसके लिए लिख रहे हों। इस बात को ऐसे कहूँ कि प्रेमचंदजी ने 'ईदगाह' कहानी बाल साहित्य कहकर नहीं लिखी थी या 'पंच परमेश्वर' को बाल साहित्य की श्रेणी में तो नहीं रखते। लेकिन वो बच्चों और बड़ों को समान रूप से आकर्षित या प्रभावित करती हैं। इसी तरह चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' जी की कहानी 'उसने कहा था' हमने 10वीं या 11वीं में पढ़ी। हम उसको केवल किशोर साहित्य या एक युवा साहित्य कहकर नहीं छोड़ सकते हैं, वो सभी के लिए लिखी गई थी।

अच्छा बाल साहित्य कैसा हो, इसके निर्धारण में बाज़ार की भी भूमिका है। बाज़ार से काफ़ी नुक़सान पहुँचा है। यहाँ पाठक को ध्यान में रखकर लिखने की बात होती है या एक तरह की चीज़ों को सामने लाने की बात होती है। अब बाल साहित्य या स्कूलों में भी जो आ रहा है उस सबके स्टेकहोल्डर मुख्यतः तीन लोग हैं– लेखक, पाठक, मतलब उपयोग करने वाला बच्चा और वो लोग जो उस तक बाल साहित्य पहुँचाते हैं यानी शिक्षक और अभिभावक।



बच्चे हमारा लक्ष्य हैं लेकिन उस बच्चे के बारे में हम कितना जानते हैं? शिक्षक इस बात को जानते होंगे मगर व्यापक सन्दर्भ में ये सवाल है कि हम बच्चों के बारे में कितना जानते हैं। पाठक बनने के लिए बच्चों को सबसे पहली ज़रूरत होती है कि वो साक्षर हों। *चकमक* में जब काम कर रहे थे तब अकसर ये पूछा जाता था कि *चकमक* किस उम्र के बच्चों के लिए है या इसे किस उम्र के बच्चों को दिया जा सकता है। हमारा कहना और समझ यही थी कि जो पढ़ सकते हैं, जिनको पढ़कर समझना आता है, *चकमक* उनके लिए है। उसकी कोई दूसरी सीमा नहीं है। दूसरी बात है कि पिछले कुछ दिनों में पाठ्यपुस्तकों को जानकारी से मुक्त रखने की कोशिश और बच्चों को पाठ्यपुस्तक के आतंक से मुक्त रखने की कोशिश की गई है। इसके चलते नई तरह की रचनाएँ, नई तरह की कविताएँ और कहानियाँ पाठ्यपुस्तकों में आई भी हैं। यहाँ भी इस बात को ठीक से समझने की ज़रूरत है क्योंकि वहाँ हमेशा ये चिन्ता होती है कि पाठ्यपुस्तक ही बच्चों को पढ़ाना है या कुछ और भी पढ़ाना है।

अगर साहित्य में बच्चों की रुचि जाग्रत होनी है तो उन्हें पाठ्यपुस्तक से भिन्न किताबें देनी ही होंगी। रोज़मर्रा की कक्षा में आप इनका कितना इस्तेमाल कर पाएँगे, शिक्षक के नाते इसमें समय सीमा भी होगी। कृष्ण कुमारजी का एक कथन बताना चाहूँगा। वे कहते हैं कि, 'हम सब लोग बाल साहित्य के शौक़ीन हैं, सोचते रहते हैं कि यह क्षेत्र क्यों लगातार दिक़्क़त पैदा करता है। मामला सिर्फ़ बाल साहित्य का नहीं है, कई और चीज़ों का भी है। कलाओं का मामला है। स्कूल में कलाओं की भी व्याप्ति नहीं हो सकी है। पुस्तकालय की व्यापित नहीं हो सकी है। हम बनाते ज़रूर हैं, इसमें पैसा भी ख़र्च होता है, लेकिन वह चीज़ दिखती नहीं है।'

('शिक्षा और बाल-साहित्य' : कृष्ण कुमार *शैक्षणिक सन्दर्भ* अंक 80)

मूलत: यह कृष्ण कुमारजी ने *चकमक* के 300वें अंक के विमोचन की पूर्व संध्या पर दिए गए अपने व्याख्यान में कहा था।

हालाँकि पिछले कुछ समय से इन दिशाओं में काफ़ी सारा काम हुआ है लेकिन वह दिखता नहीं

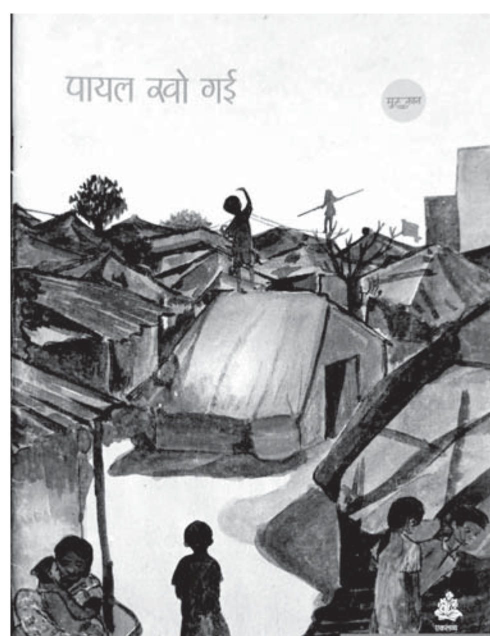
है। बाल साहित्य को सबसे ज़्यादा नुक़सान उन लेखकों से होता है या होता रहा है जो बच्चों के लिए लिखने को बाएँ हाथ का खेल समझते हैं। जिसने इसको बाएँ हाथ का खेल नहीं समझा है वो ही इसमें बेहतर योगदान कर रहे हैं।

गुरबचन सिंह : विजय, अब आप अपनी बात रखें।

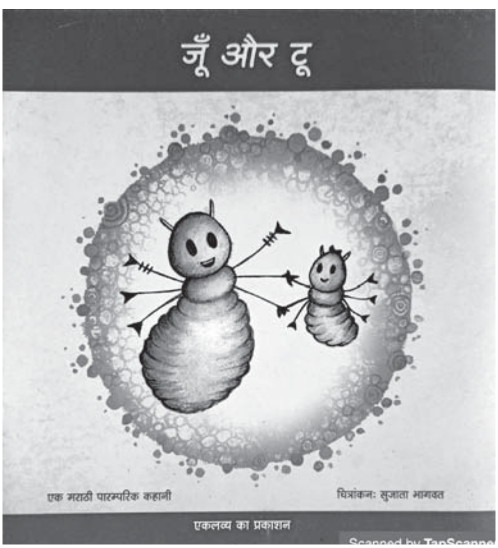
विजय : मैं पिछले 6–7 सालों से पहली से पाँचवीं कक्षा को पढ़ा रहा हूँ। जब से लॉकडाउन शुरू हुआ है, तब से मैंने बाल साहित्य पर बच्चों के साथ काम करके बहुत निकटता से उसे देखा है। लॉकडाउन में विद्यालय बन्द हो गए थे तब बच्चे पढ़ाई-लिखाई से कैसे जुड़े रहें इसपर सोचा। यह विचार आया कि स्कूल में जो अलग पुस्तकें हैं उनको घर-घर जाकर बच्चों तक पहुँचाएँ। सबसे पहले एकलव्य से लगभग 150 किताबें मँगवाईं। पहले घर-घर जाकर बच्चों को किताबें दीं, फिर हमने गाँव में कुछ समूह बनाकर, पुस्तकें लेकर बच्चों के साथ काम करना शुरू किया। कुछ ही समय में पाया कि जो बच्चे अटक-अटक कर पढ़ रहे थे, पढ़ना पूरी तरह से नहीं जानते थे वो प्रभावी रूप से पढ़ने लगे, चीज़ों को समझने लगे। मैं बता दूँ कि मेरा स्कूल बाँसवाड़ा से लगभग 25 किलोमीटर दूर है। ऐसा गाँव जहाँ पढ़ाई की किसी भी प्रकार की सामग्री नहीं है, मोबाइल नहीं, टीवी नहीं, किसी भी तरह के सामान नहीं। तीन-चार साल पहले जब शुरुआत हुई तब भी हम बाल साहित्य का प्रयोग कर रहे थे, लेकिन पाठ्यक्रम की वजह से इसका बहुत ज़्यादा उपयोग नहीं कर पाते थे। मेरा मानना है कि 'इस कहानी से क्या शिक्षा मिलती है, क्या सीख मिलती है', जैसी कहानियाँ बच्चों के लिए उबाऊ होती हैं। हमने ऐसी कहानियों पर धीरे-धीरे काम बन्द कर दिया।

बच्चे नए-नए शब्दों को जानने और सीखने के लिए बहुत उत्सुक होते हैं। कक्षा के बहुत-से छोटे उदाहरण हैं, जैसे जब हम *चूहे को मिली पेंसिल* कहानी पर बात कर रहे थे तो पनीर शब्द बच्चों के लिए अपरिचित था। उस समय मेरे पास लैपटॉप था, मैंने पनीर बनाने की पूरी प्रक्रिया बच्चों को बताई। दूसरी बार शेर और चूहे की बात थी। हमने पूछा यदि गाँव में शेर आ जाए तो क्या करोगे (हमारे विद्यालय में अकसर पैंथर आ जाते हैं।) बच्चों ने कहा कि शेर आएगा तो हम चोर आया, चोर आया चिल्लाएँगे। हमने पूछा, चोर आया, चोर आया क्यों चिल्लाएँगे तो उन्होंने कहा कि अगर हम शेर आया शेर आया चिल्लाएँगे तो कोई भी घरों से बाहर नहीं आएँगे। लेकिन चोर आया चिल्लाने पर सब बाहर आ जाएँगे। इस तरह बच्चे अपने परिवेश की जानकारियाँ समझते हैं।

जो बच्चे पढ़ना नहीं जानते थे वे भी 2–3 समूह में बैठकर चित्रों पर अपनी भाषा में बहुत बातचीत करते थे। यानी पढ़ना शुरू करने से पहले भी बाल साहित्य की पुस्तकें बहुत काम आती हैं। चित्रों वाली पुस्तकें, अगर उसमें परिवेश के जानवरों जैसे– गाय, घोड़े, हाथी, झोपड़ी, चिड़िया आदि के चित्र हों तो बच्चे उनपर आपस में बहुत बातें करते हैं। ये बातचीत उनकी भाषा से बड़ी कक्षाओं में जाते-जाते धीरे-धीरे स्कूल की भाषा की ओर जाती है।



कहानियाँ निष्कर्ष निकालने और विश्लेषण वाली हों, क्योंकि बच्चे कहानियों का विश्लेषण करते हैं, अपनी समस्याओं का कैसे समाधान करें इसपर बात करते हैं। 'बिल्ली के तीन बच्चे' कहानी को बच्चों ने बहुत ज़्यादा पसन्द किया है। कई बच्चे इसकी ई-बुक को कई बार पढ़ चुके हैं। जब भी पढ़ते हैं बहुत मज़ा लेते हैं। *चकमक, प्लूटो, साइकिल* जैसी किताबों का बच्चे बहुत इन्तज़ार करते हैं। इन किताबों में दी गई सामग्री बच्चों के लिए बहुत प्रभावी होती है। बच्चे इसे मन से पढ़ते हैं, और बातचीत भी करते हैं। पढ़ना सीखने से पहले और पढ़ना सीखने के दौरान, दोनों जगह बाल साहित्य बहुत काम आता है। पिछले 5-7 महीने में हमारे



यही अनुभव रहे हैं। हम बच्चों के साथ दो घण्टा काम करने के बाद आ जाते हैं लेकिन उसके बाद भी बच्चे किताबों को पढ़ते रहते हैं। एक बार, बच्चों को किताबें बाँटने के बाद दूसरे दिन जब मैं किताब लेने घर गया तो मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। असाक्षर पिताजी ने कहा कि मेरा हरीश रात को हमें कहानी सुनाकर सोता है। ऐसे भी बदलाव हुए हैं। यदि हमारे पास ऐसा बाल साहित्य है जो बच्चों को संज्ञानात्मक रूप से सक्रिय कर सके, बच्चे को सोचने पर मजबूर कर सके, बच्चों की जमी-जमाई धारणाओं को चुनौती दे सके, तो बच्चे बेहतर तरीक़े से पढ़ते हैं। एकलव्य से आई किताबों से पहले भी हमारे पास किताबें थीं, हम बच्चों को देते थे लेकिन बच्चों को उनमें ज़्यादा रुचि नहीं थी। उसमें हमारे आदर्श, हमारे महापुरुष, महापुरुषों की जीवनियाँ जैसी चीज़ें थीं। ये मोटी-मोटी भी थीं और उनकी भाषा भी कठिन थी। लेकिन *जूँ और टू, बिल्ली के तीन बच्चे, नन्हा बाघा, चूहे को मिली पेंसिल, चकमक, प्लूटो* और *साइकिल* आदि बच्चे बहुत अच्छे-से पढ़ते हैं।

यह काम जब शुरू किया मेरे साथी शिक्षकों ने मुझे रोका और कहा कि बच्चे किताबें फाड़ देंगे, खो देंगे, मुझे भी डर लगा। पर मुझे आश्चर्य तब हुआ जब एक किताब मैंने एक बच्ची को दी। दूसरे दिन बच्ची ने कहा, सर किताब फटी हुई थी पर मैंने उसे चिपका दिया। बच्चों के साथ किताबों को लेकर काम करते हैं तो बच्चे बहुत ही बेहतर तरीक़े से किताबों को रखते हैं। पिछले 7 महीनों में 200 किताबों में से एक भी नहीं फटी है। बच्चों को किताबें उलटने-पलटने और चित्रों पर बातचीत करने के मौक़े मिल रहे हैं। यदि बच्चों को कोई कहानी सुनाते हैं, तो वे उसकी माँग करते हैं, पूछते हैं कहानी कौन-सी किताब से है। इन प्रतिक्रियाओं से महसूस होता है कि जिसे हम अर्थपूर्ण व प्रभावपूर्ण पढ़ना कहते हैं वह मैं इन 7 महीनों में काफ़ी बेहतर रूप से करवा पाया हूँ। इसके लिए किसी कक्षा में बैठकर बच्चों को नहीं पढ़ा रहा, केवल घर-घर जाकर बच्चों को किताबें बाँट रहा हूँ या 10-12 बच्चों के समूह में जाकर आधा या एक घण्टा बच्चों से बात करता हूँ। मुझे लगा कि जिन बच्चों के साथ काम हो, उनके लिए चुना बाल साहित्य उनके परिवेश का हो, मनोरंजक हो और बच्चों को कल्पना की दुनिया में सैर कराए। ज़्यादा उपयोगी होगा जब वह उनके जीवन से जुड़े अनुभवों से हो, उनकी भाषा के शब्दों से हो। इसके लिए हमने गाँव में बच्चों से कहानियाँ सुनीं, कविताएँ सुनीं और लिखीं। छोटे-छोटे पठन कार्ड बनाकर काम किया। *बिल्ली के तीन बच्चे* कहानी को यहाँ की भाषा,

वागड़ी में बदलकर काम किया। बच्चे उसको उत्साह के साथ पढ़ने लगे।

गुरबचन सिंह : शुक्रिया। आपने बाल साहित्य में स्थानीय भाषा के सवाल को उठाया है। एकलव्य प्रकाशन ने बुन्देली और कई भाषाओं में किताबों को लाने की अच्छी पहल की है। मैं टुलटुलजी से अपनी बात रखने को कहूँगा।

टुलटुल बिस्वास : शुक्रिया। अभी की बातचीत में बाल साहित्य को लेकर लगभग सारा दृश्य सामने आ गया। एकलव्य की दृष्टि से, किताबों को बनाने की दृष्टि से, उनको प्रकाशित करने की दृष्टि से सोच विचार कर देखूँ तो लगता है कि हम साहित्य को, कहानियों को, जो पाण्डुलिपियाँ हमारे पास आती हैं, उन्हें अलग-अलग चश्मों से देखने की कोशिश करते हैं। एक प्रकाशक का चश्मा है, क्या चीज़ें अभी मौजूद हैं, बच्चों के हाथ में हैं। क्या चीज़ें मौजूद नहीं हैं, किस तरह की चीज़ें बिलकुल भी दिखाई नहीं देतीं। एक चश्मा सम्पादक का है। वह देखता है कि चीज़ में क्या ताक़त है और पहचानने की कोशिश करता है उसमें क्या बेहतर हो सकता है। एक चश्मा ख़ुद का यानी पाठक की दृष्टि का होता है। इन सारे चश्मों के बीच मूलतः मैं एक पाठक हूँ। बचपन से पढ़ने का शौक़ था। साहित्य और बच्चों के लिए तैयार होने वाली किताबें देखते ही उनपर हाथ जाता है और पढ़ना शुरू हो जाता है। अतः एक पाठक के रूप में क्या चीज़ आपको आकर्षित करती है, आपको बाँधे रखती है यह बहुत मायने रखता है। एक बात जो यहाँ भी कही गई वो मुझे और टीम के लोगों को भी महत्त्वपूर्ण लगती है। जब बच्चे कोई किताब उठाते हैं और पढ़ते हैं तो वे किताब में अपना अक्स ढूँढ़ते हैं, उसके पात्रों, घटनाओं, ज़िन्दगी की परिस्थितियों, चुनौतियों, संघर्षों, उपलब्धियों इन सभी में अपने-आप को ढूँढ़ते हैं। इसमें ज़रूरी नहीं कि उनके सन्दर्भ की ही कहानी हो तभी यह उसमें पाएँ। जो बहुत परिचित हो वह भी अपना लग सकता है और कुछ पराया एवं अपरिचित हो वह भी। अगर उसमें कोई कारक ऐसे हैं जिसमें कोई ऐसा पात्र है चाहे दूसरे देश या दुनिया का ही हो लेकिन उसकी परिस्थिति आपसे मिलती है, उसका जीवन संघर्ष आपसे जुड़ता है तो वो भी अपना लग सकता है। इतने सालों से जो किताबें हम तैयार कर रहे हैं, पढ़ रहे हैं उसमें भी देखते हैं कि यह ज़रूरी नहीं कि परिचित सन्दर्भ से ही बात आए। परिचित सन्दर्भ से मदद मिलती है लेकिन अपरिचित सन्दर्भ में भी जुड़ाव बन पाते हैं। उदाहरण के लिए, बहुत सालों पहले एकलव्य ने एक किताब *प्यारा कुनबा* प्रकाशित की। यह दो दोस्तों की कहानी है। ये दोस्त एक इन्क्यूबेटर बनाने की कोशिश कर रहे हैं। किताब रूसी है, बिलकुल अलग सन्दर्भ है, अलग तरह की जगह है, बच्चों का जीवन अलग तरह का है। पर इसमें बच्चों को अपनी छानबीन करने की



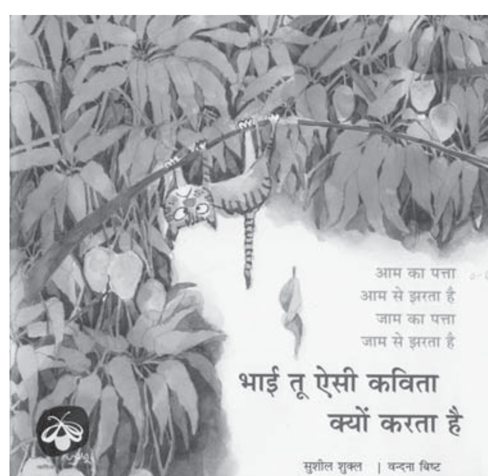
जगह मिलती है। इस किताब में बच्चों का जुनून, कि हमें ऐसी एक चीज़ बनाना है, अण्डे से चूज़े निकालना है, हम भी महसूस करते हैं। पाठक भी कुछ इस तरह का करना चाहते हैं और इसलिए बहुत सारे बाल पाठकों को किताब बहुत पसन्द आती है। साहित्य में यह भी है कि एक बार जब कोई रचना बन जाती है, रचनाकार उसे आकार दे देता है, उसके बाद जो उसको पढ़ेंगे उसका स्वाद, उसकी ख़ुशबू, उसकी आवाज़ को महसूस करेंगे, उनकी संवेदनाओं को महसूस करेंगे वह उनकी अपनी हो जाती है। तमाम क़िस्म के पाठक हैं, बच्चे हैं और अलग-अलग सन्दर्भ के बच्चे हैं। किसी कहानी, किसी रचना

या किसी कविता में ये बहुत महत्त्वपूर्ण है कि वो किन चीज़ों को अपना बना पाते हैं। किताबें



तैयार करते हुए इसपर मशक़्क़त करने की कोशिश करते हैं कि विविध तरह के बचपन हैं। भोपाल शहर में ही अनेकों बचपन हैं। कोई एक किताब ऐसी हो नहीं सकती जो हर तरह के बचपन से बातचीत कर सके। किताबें किस बचपन से बातचीत करती हैं, किस बचपन को आमतौर पर किताबों में प्रधानता मिलती है और कौन-से बचपन जगह नहीं पाते हैं ये महत्त्वपूर्ण सवाल है। पर इसमें ये ख़तरा है कि अगर एक किताब से यह अपेक्षा करें कि ये तमाम बच्चों से बातचीत करे, तमाम तरह के बचपन को जगह देने की कोशिश करे तो स्थिति बॉलीवुड जैसी हो जाएगी। एक समय पर बॉलीवुड की कई फ़िल्में सबको ख़ुश करने के उद्देश्य से बनाई जाती थीं, तब वे सबकी होकर भी दरअसल किसी की नहीं थीं। किताबें बनाने में भी यह सरोकार हमेशा बना रहता है कि सबकी छवियों, सबकी ज़रूरतों, सबकी आकांक्षाओं को शामिल कर लेने का ख़तरा न मोल लिया जाए। रचना में, कहानी में, कविता में इन सारी चीज़ों में कौन-से ऐसे मुक़ाम हैं, कौन-से ऐसे मोड़ हैं, कौन-से ऐसे twist हैं जहाँ पर आप पाठक के रूप में ठिठकते हैं, जहाँ आप रुककर सोच में पड़ जाते हैं या रुककर थोड़ी देर खो जाते हैं या जहाँ आप अपनी कहानी बुनने लगते हैं; चाहे बच्चे हों या बड़े, उन सबके लिए इस तरह के ठीये किसी भी रचना, कहानी या कविता में होना बहुत ज़रूरी हैं। ये ठीये कथा में भी सम्भव हैं और बच्चों की चित्रात्मक किताबों में भी सम्भव हैं।

ये ठीये दो काम करते हैं। यदि वे आपको बहुत अपने लगते हैं तो वो आपको अपना अक्स वापस दे रहे होते हैं। कोई घटना या कोई अनुभव ऐसे हो सकते हैं जो आपको अपने-से लगें और आप मनन करने लगें। दूसरा हो सकता है कि बिलकुल ही नई बात हो, अनजानी-सी बात हो जो आपने सोची नहीं थी, अपेक्षा नहीं थी कि आगे ये होने वाली है। ये ठीये एक launchpad का काम करते हैं। कल्पना की छलाँग लगाने के लिए। दिमाग़ की संरचना में जो सोच पाते हैं उससे आगे ले जाने का platform देते हैं। राजेश की यह बात कि ये बाल साहित्य या बड़ों के साहित्य के विभाजन की बात नहीं है, बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। कोई भी साहित्य अगर आपको बार-बार उस तक लौट जाने के लिए बुलाता है तो वो नवाजने लायक़ साहित्य है। ऐसी चीज़ें जो वापस आपको उसपर लौट जाने पर मजबूर करती हैं और हर बार जब आप उसपर लौटकर जाते हैं तो आपको कुछ नए अर्थ मिलते हैं, कुछ नए बिन्दु मिलते हैं, कुछ विचार करने के लिए या लाइन के बीच अर्थ निकालने में या चित्रों के shadows में आपको कुछ नई चीज़ें मिलती हैं और interpretation और



विश्लेषण के मौक़े देती हैं। मैं हमेशा ही एक किताब की बात करती हूँ *छुटकी उल्ली*। इस किताब को जब प्रकाशित कर रहे थे तब वो मेरे लिए बहुत अलग मायने रखती थी और आज जब पढ़ती हूँ तो वो कई और परतों में नए मायने देती है। पहले मैं एक बहुत मज़ेदार कहानी के रूप में उसको पसन्द करती थी और अब मैं एक माँ और बेटी उल्ली के संवाद की दृष्टि से देखती हूँ और उसके बिलकुल ही अलग अर्थ नज़र आते हैं। ये बात शायद बच्चों से लेकर बड़ों तक को आकर्षित करे। इसको ऐसे भी कह सकते हैं कि कोई ऐसी रचना जो आपको मजबूर करती है कि आप उसके बारे में जब भी पढ़ें नई-नई तरह से सोचें। वह ताक़तवर रचना है।



एक और उदाहरण पश्चिमी साहित्य से। *Winnie the Pooh* नाम की सीरीज़ काफ़ी प्रचलित रही है। यह ए ए मिलन ने लिखी है। उनकी किताब है *The House at Pooh Corner*. वो *Winnie the Pooh* जैसी ही मज़ेदार है, हल्की-फुल्की है। एक बच्चा और उसके बहुत सारे stuffed खिलौनों के साथ बुनी हुई बहुत सारी कहानियाँ हैं, पर उनमें कहीं-कहीं पर साहित्य के ऐसे टुकड़े मिलते हैं जो आपको ज़िन्दगी के बारे में सोचने को मजबूर करते हैं। एक नदी के बहने का विवरण ऐसा मिलेगा जिसमें उम्र के अलग-अलग पड़ाव में ज़िन्दगी कैसी होती है, उसका अक्स देख सकते हैं। साहित्य और कहानी के अन्दर इस तरह की सम्भावना बहुत महत्त्वपूर्ण लगती है। जब *प्रणव का स्कूल में पहला दिन* ये किताब प्रकाशित कर रहे थे तब काफ़ी बहस हुई थी, लग रहा था कि ये बहुत सरल है। फिर हमने कुछ बच्चों को इस किताब को पढ़ाया और देखा कि बच्चों को मज़ा आ रहा है और वे, पहले दिन का जो डर होता है, स्कूल जाने का, उससे काफ़ी सम्बन्ध बना पाते हैं। हमने तय किया कि इसको प्रकाशित करेंगे और जब प्रकाशित होकर बच्चों के हाथों में गई तो काफ़ी रिस्पॉन्स मिले कि बच्चे बहुत पसन्द करते हैं। कई बार लगता है कि कहानी में बहुत तहें (layers) होना ज़रूरी नहीं है। तहें हों तो हम उसपर लौट-लौट जाते हैं, लेकिन कई बार कोई बहुत सरल-सी कहानी भी जो अच्छी तरह से कही गई है, उसकी बुनावट अच्छी है, कोई बहुत grand plot उसमें नहीं है मगर वो उस पल की आपकी किसी संवेदना को छू जाती है किसी-न-किसी भावात्मक ज़रूरत को पूरा करती है और वह भी महत्त्वपूर्ण होती है।

प्रभात कुमार बसंत ने एक श्रृंखला लिखी *कक्कू के कारनामे*। इसमें हल्की-फुल्की स्कूल की मस्ती, दोस्तों के साथ मस्ती के क़िस्से हैं जो बहुत मज़ा दे जाते हैं। बच्चों के लिए पढ़ने का, उस मज़ाक़ का भी एक महत्त्व है। ज़रूरी नहीं कि हर किताब में बहुत सारी तहों में ही चीज़ें हों। पर कुछ चीज़ें ऐसी ज़रूरी हैं जैसे, suspense है, mystery है, रोमांच है, किसी चुनौती को पार करने का मज़ा है या किसी रहस्य की गुत्थी को सुलझाने का मज़ा है। Susan Ager ने अपनी किताब में कहा है कि कहानियाँ वो जगह देती हैं जिसमें यथार्थ की जकड़न से आज़ादी की बात होती है, और सिर्फ़ यथार्थ की जकड़न नहीं बल्कि जो आप चाहते हैं, कल्पना करते हैं, या जो आप कल्पना भी नहीं कर सकते हैं, ऐसी चीज़ों का स्वाद देने का काम कहानियाँ करती हैं। ज़िन्दगी की ऐसी चीज़ें जो पकड़ में नहीं आती हैं, जो tangible नहीं हैं,

मतलब जैसे ज़िन्दगी और मौत के बीच की बात है, या सच और झूठ के बीच की बात है या काले और सफ़ेद के बीच की बात है। इन grey areas की बातों पर बहुत ख़ूबसूरत चीज़ें लिखी गई हैं मगर बहुत ही कम। जैसे, एक किताब है *कीमिया*, यह ईरानी लेखिका हदीस गुलज़ार ग़ुलामी की कहानी है। वह बात करती हैं कि कैसे एक बच्ची को मौत आती है और बच्ची कैसे मौत के साथ खेल खेलती है और मौत को हरा देती है। जब मैं इन चीज़ों को पढ़ती हूँ और अपनी बेटी से बात करती हूँ, उसके दोस्तों से बात करती हूँ तो मैं यह भी देखती हूँ कि



मुस्कान प्रकाशन की किताबें

बच्चे भी इन सवालों पर बहुत सोच रहे होते हैं और आपस में बातचीत कर रहे होते हैं। ये जो intangible वाले spaces हैं, इनपर बच्चों के लिए लिखा हुआ बहुत ही कम दिखाई देता है। अन्त में सिर्फ़ एक-दो बातें यह कहना चाहती हूँ, हालाँकि मेरा प्रत्यक्ष अनुभव नहीं है पर बहुत सारे बच्चों को, अध्यापक को काम करते हुए देखा है। Astrid Lindgren कहती हैं : 'children create miracles when they read'। भोपाल के आसपास के गाँव में हम reading rooms चलाते हैं। उनमें मेरे बच्चों के साथ कुछ अवलोकन रहे हैं जिसमें पढ़ने की देहलीज़ के इस पार वाले बच्चे और उस पार वाले बच्चे, उनके साथ बैठकर अगर आप पढ़ने का काम करें तो जो पढ़ पा रहे हैं उनके चेहरे की जो चमक होती है और जो अभी पढ़ नहीं पा रहे हैं उनके चेहरे की जो ललक होती है, वो दोनों को देखने का अनुभव ज़बरदस्त होता है। जब आप पाठ्यपुस्तक के बन्धनों को तोड़कर अलग-अलग बाल साहित्य की दुनिया बच्चों के बीच खोलते हैं तो ये चमक / ललक देखने को मिलती है।

गुरबचन सिंह : शुक्रिया टुलटुल।

रजनी : वैसे बच्चे ख़ुद ही चुन लेते हैं जो उनको अच्छा लगता है और उसमें भी उनको क्या-क्या समझना चाहिए, ये धीरे-धीरे समझते जाते हैं। राजेशजी ने कहा कि अच्छा बाल साहित्य वो है जो बच्चों को भी अच्छा लगे और बड़ों को भी। मेरे अनुभव भी ऐसे हैं। मैंने अपने बेटे के साथ में बहुत-सी किताबें पढ़ीं और पढ़ती भी रहती हूँ। अधिकांश रचनाएँ जो मैं उसके साथ में पढ़ रही हूँ, मैंने पाया है कि वो हम दोनों को अच्छी लगती हैं। यह ज़रूर हो जाता है कि उसका क्या अर्थ उसको कब समझ में आने लगा। जैसे एक दिन उसने मुझे धूप में खड़े होकर कहा कि धूप निकलती है, धूप के आगे धूप निकलती है, धूप में खोलो मुट्ठी तो कुछ नज़र नहीं आता। वह शायद साढ़े तीन साल का था। उसने कहा कि देखो मम्मा, अगर धूप में मुट्ठी खोलो तो हाथ में कुछ नहीं आता है। लेकिन धूप में ये छोटे-छोटे दाने तो दिख रहे हैं। एक और अनुभव है, हम कक्षा एक गणित की किताब का कवर बना रहे थे, दो चित्र थे कवर के लिए। मैंने 25 वयस्कों को दिखाया, उनकी राय पूछी, सबने कहा कि ये वाला अच्छा है और ये वाला अच्छा नहीं है।

लेकिन जब 6-8 साल के 25 बच्चों से पूछा कि आपको दोनों में से कौन-सा अच्छा लगा तो उन्होंने हमारी पसन्द वाले कवर को नापसन्द कर दिया। इन कवर में सिर्फ़ चित्र

थे, बच्चों ने उन दोनों के चित्रों को पढ़ा और निर्णय लिया। सभी 25 बच्चों ने एक कवर चुना और बताया भी कि क्यों ये अच्छा है। अतः जब हम ये कसौटियाँ कसते रहते हैं कि क्या अच्छा लगेगा, क्या मानदण्ड हैं, कि इस तरह की चीज़ें बच्चों को अच्छी लगेंगी लेकिन ऐसा बहुत बार होता है कि बच्चे उसमें कुछ ढूँढ़ पाते हैं पर हम लोग नहीं ढूँढ़ पाते। जब हम वयस्क कुछ तय करते हैं कि ऐसा होगा और ये बच्चों को अच्छा लगेगा वह वैसा ही हो बिलकुल जरूरी नहीं है। तो मुझे लगता है कि बहुत ज़्यादा सोचना नहीं चाहिए, बच्चों को दे देना चाहिए और वे अपने लिए उपयोगी विषयवस्तु ढूँढ़ लेते हैं।

टुलटुल बिस्वास : एक तो, बचपन में विविधताएँ और दूसरा, क्या है जो साहित्य में नहीं दिखाई देता है यह दोनों महत्त्वपूर्ण हैं। विविध तरह के बचपन बाल साहित्य में बहुत कम दिखाई देते हैं परन्तु इनके बारे में लिखने में एक ख़तरा भी है। अगर यह सोचकर लिखें कि बच्चों के लिए लिखना है तो कबाड़ा हो जाता है। इसी तरह विशेष बच्चों के लिए लिखना है यह सोचकर लिखने से भी कबाड़ा हो जाता है। फिर भी यह ज़रूरत है कि जो बच्चे अपनी विशेष चुनौतियों के साथ जीवन जी रहे हैं उनकी भी जगह हो। मगर उनकी जगह में अकसर ऐसी कहानियाँ मिलेंगी जिनमें उनको बहुत ही दयनीय रूप से दिखाया जाएगा या कहानी के अन्त तक उनको कहानी का हीरो बना दिया जाएगा। जैसे हीरो बने बग़ैर उनका कोई अस्तित्व ही नहीं है। इन ख़तरों से वाक़िफ़ होते हुए एक सरल, सहज, मज़ेदार, चुनौती से भरा मिला-जुला बचपन हो, ये मुझे लगता है। उस लिहाज़ से *कुछ दोस्त, माछेर झोल* या *प्यारी मैडम* नाम की किताब जो एक विस्थापन का अन्देशा झेलने वाले बचपन की कहानी हैं या *बोरे वाला* जैसी किताब है जो घर में मानसिक असन्तुलन झेलने वाली माँ की परिस्थिति में जीने वाली बच्ची की कहानी है, ऐसे कई सारे उदाहरण मन में आते हैं। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात कि बातचीत करना और बच्चों की राय लेना बाल साहित्य की पूरी प्रक्रिया में हो। उसमें दो तरीक़े हो सकते हैं।

पहला तरीक़ा utilitarian तरीक़ा कि हमें ये किताब छापनी है, हमें यह कवर छापना है। किसी आर्टिस्ट ने चित्र बनाकर दिए हैं तो उनको बच्चों के पास ले जाना और उनसे राय लेना, इसे मैं utilitarian तरीक़ा मानती हूँ कि आपको कुछ feedback चाहिए तो आप वो लेते हैं। उसका अपना महत्त्व है, उसको करना ही चाहिए। दूसरा तरीक़ा ज़्यादा अहम लगता है। रजनी भी बता रही थीं और तीनों शिक्षक साथियों ने भी कहा कि बच्चों के साथ अनायास ही किसी भी मुद्दे



पर बातचीत करना और उनकी बातों को सुनना, और बहुत ध्यान से सुनना क्योंकि परतों के बीच में जो चीज़ें हैं उनको भी सुनना। क्या हम अपने कान उसके लिए खुले रख रहे हैं क्योंकि समझने की दृष्टि से वहाँ ज़्यादा मसाला मिलने की सम्भावना लगती है। दोनों तरह से बच्चों के साथ संवाद बहुत ज़रूरी लगता है।

गुरबचन सिंह : आप सभी ने इस संवाद में हिस्सा लिया और अपने अनुभवों व विचारों से सार्थक बनाया, इसके लिए आप सभी का धन्यवाद।